मुस्लिम आरक्षण पर उत्तर प्रदेश सरकार की क़लाबाज़ी

डा. सैयद ज़फ़र महमूद

जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में मुसलमान कुल आबादी का 18.5 प्रतिशत हैं। राज्य में फ़िलहाल सत्ता पर आसीन राजनीतिज्ञों ने फ़रवरी 2012 में चुनाव के समय यह घोषणा की थी कि मुसलमानों को उनकी आबादी के अनुपात में 18 प्रतिशत आरक्षण दिया जाएगा। सामाजिक न्याय के इस वायदे से दुनिया में भारत की तस्वीर और अधिक चमकने की उम्मीद जगी थी। लगने लगा था कि देश के इस सबसे बडे राज्य में अब राजनीतिक न्याय के एक नए युग का सूत्रपात होगा और कोई इंसान किसी दूसरे इंसान का हक़ नहीं मारेगा।

यह घोषणा पार्टी के न्याय-प्रिय होने का संकेत दे रही थी और उसकी इस न्यायपूर्ण मंशा को अभिव्यक्ति कर रही थी कि जिस तरह 1950, 1956 और 1990 में अनुसूचित जातियों को (जिन में केवल हिन्दू, सिख तथा बौद्ध मत के अनुयायी शामिल हैं) आरक्षण दिया गया है उसी तरह मुसलमानों को भी (जो सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार अन्य सभी धार्मिक समुदायों की अपेक्षा सामाजिक, शैक्षिक एंव आर्थिक रूप से पिछडे हुए हैं) क़ानून के अनुसार आबादी में उनके अनुपात के हिसाब से आरक्षण दिया जाए। अतः मुसलमान पार्टी के नीति निर्धारक नेताओं की राजनीतिक दूरदृष्टि पर भरोसा करने लगे। मुसलमानों को उम्मीद थी की पार्टी अपने वायदों को पूरा करने के लिए तुरन्त ही आवश्यक कार्रवाई करेगी तथा इसके लिए शासनादेश का मसौदा मुसलमानों तथा उनका हित चाहने वाले लोगों के सामने जल्द ही लाएगी। मुसलमान यह अपेक्षा कर रहे थे कि यह लोग उन अन्य राजनीतिक दलों से भिन्न हैं जो एक चुनाव से पहले वायदा करके उसे अधूरे मन से भी पूरा करने को अगले चुनाव की पूर्व संध्या तक के

लिए टाल देते हैं। एसे राजनीतिक दलों का चुनाव में क्या अंजाम होता है यह अब किसी से छिपा हुआ नहीं है।

उत्तर प्रदेश की वर्मान सरकार को राज्य की बाग-डोर संभाले छः महीने हो चुके हैं। लेकिन अपेक्षाकृत कम महत्तव वाले कुछ सरकारी पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति के कुछ मामलों के अतिरिक्त नई सरकार ने मुसलमानों से किए गए वायदों को क्रियान्वित करने क लिए कोई महत्तवपूर्ण संस्थागत उपाय अभी तक नहीं किया है। एसे दिखावे के सांकेतिक काम तो केन्द्र व राज्य की पिछली कई सरकारें करती रही हैं। अर्थात मुसलमानों के आम सामूहिक हितों को ताक़ पर रख कर कुछ चुनिन्दा लोगों को फ़ायदा पहुंचा देना। लेकिन निश्चित रूप से देश में एसे मुस्लिम समाज सेवियों की भी कमी नहीं है जो अल्लामा इक़बाल के इस पैग़ाम को अपने लिए मार्गदर्शक बनाते हैं किः

क़ौमों की तक़दीर वह मर्द-ए-दरवेश
जिसने न ढूंढी सुल्तान की दरगाह

अर्थात क़ौमों की तक़दीर संवारने वाले लोग उनके वह निस्वार्थ व्यक्ति होते हैं जो शासक के दरबारी बनने की चाह में नहीं लगे रहते।

अभी हाल ही में राज्य की वर्तमान सरकार ने धीमे से यह घोषणा कर दी कि राज्य में मुसलमानों को आरक्षण देने के लिए ज़रूरी है कि केन्द्र सरकार संविधान में संशोधन करने के लिए संसद में विधियक लाए। इस तरह राज्य सरकार ने फ़रवरी, मार्च 2012 में मुसलमानों को फांसने के लिए फेंकी अपनी राजनीतिक कमन्द का फन्दा अन्तिम रूप से कस दिया। इस पर सितम यह कि सच्चर कमेटी की सिफ़ारिशों के क्रियान्वन के चुनावी वायदे को पूरा करना तो दूर वक़्फ़ क़ानून की खुल्लम खुल्ला अनदेखी करते हुए राज्य में दरगाहों व सज्जादा गाहों के लिए एक विशेष क़ानून लाने की कोशिश की जा रही है और उनकी व्यवस्था इस

प्रस्तावित क़ानून के माध्यम से पूरी तरह सरकार के आधीन करने की मंशा व्यक्त की जा रही है। शायद इस के पीछे कबड्डी का यह गुर है कि सामने वाले के पाले में जा कर खेलो तो ज़्यादा फ़ायदा है, सामने वाला आत्म रक्षा में ही लगा रहेगा।

यह मानना सिरे से ही आधारहीन है कि मुसलमानों को आरक्षण देने के लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता है। जस्टिस रंगानाथ मिश्रा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है। इसी लिए मिश्रा आयोग ने पूरे देश में सभी सरकारी पदों पर समस्त मुसलमानों के लिए दस प्रतिशत तथा अन्य अल्पसंख्यकों के लिए पांच प्रतिशत आरक्षण की सिफ़ारिश की है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट (पेज 153, पेराग्राफ़ 16.2.7) में लिखा है कि इस आरक्षण को संविधान की धारा 16.4 से पूर्ण समर्थन तथा संरक्षण प्राप्त है। आयोग ने स्पष्ट लिखा है कि धारा 16.4 में इस बात की बिना शर्त इजाज़त दी गयी है कि यदि सामयिक सरकार का यह मानना हो कि देश के पिछडे नागरिकों के किसी समूह या समुदाय का प्रतिनिधित्व सरकारी नौकरियों में समुचित रूप से नहीं हो रहा है तो नागरिकों के उस समूह के हित में उसे सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया जा सकता है। यदि उत्तर प्रदेश सरकार के नज़दीक कोई एसी मजबूरी है जिसके आधार पर वह यह कह रही है कि संविधान में संशोधन के बिना मुसलमानों को आरक्षण नहीं दिया जा सकता तो पहली बात तो यह है कि चुनाव से पहले इस लाचारी को क्यों नहीं बताया गया, दूसरी बात यह कि उन क़ानूनी मजबूरियों को सिद्ध करने वाले क़ानूनी बिन्दु और प्रपत्र मुसलमानों के सामने लाए जाएं ताकि मुसलमान व उनका हित चाहने वाले बुद्धिजीवी एंव विशेषज्ञ उस पर अपनी राय दे कर सरकार की मदद कर सकें और सरकार मुसलमानों से किया गया पूरा करने में समर्थ हो सके।

यदि धर्म के आधार पर आरक्षण ग़ैर-क़ानूनी है तो 1950 से अब तक हिन्दुओं को, 1956 से सिखों को तथा 1990 से बुद्धिस्टों को अनुसूचित जाति की आड़ में आरक्षण कैसे मिला हुआ है। ग़ौर किया जाए तो अनुसूचित जाति का आरक्षण मुसलमानों एंव ईसाइयों को शासन से अलग रखने की एक चाल थी। इस सम्बंध में 1950 के अध्यादेश से सम्बंधित फ़ाइलों पर नोटिंग आदि की प्रति प्राप्त करने का प्रयास सूचना के अधिकार क़ानून के अन्तर्गत एक साल से ज़्यादा समय से जारी है, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय, गृह मंत्रालय, सामाजिक कल्याण मंत्रालय तथा क़ानून मंत्रालय एक दूसरे पर इसके जवाब की ज़िम्मेदारी डाल कर इसे टाल रहे हैं।

यह एतिहासिक गुत्थी खुलना बहुत ज़रूरी है कि 1950 के अध्यादेश में जब अनुसूचित जाति की परिभाषा निर्धारित करते समय अध्यादेश का ख़ाका बनाने की कार्रवाई चल रही थी तो यह पंक्ति कि "शर्त यह है कि वे हिन्दू धर्म के अनुयायी हों" किसी आधार पर और कब व कैसे जोड़ दी गयी? बाद में बड़ी सरलता से हिन्दुओं के साथ सिखों तथा बुद्धिस्टों को भी इसमें शामिल कर दिया गया। इस तरह मुसलमानों तथा ईसाइयों को अलग-थलग तथा वंचित करने की चाल पूरी हो गयी। यहां यह बात याद रखने की है कि अनुसूचित जातियों के हित में धारा 16 में संशोधन कर के उप-धारा 4ए एंव 4बी शामिल करने की आवश्यकता इस लिए हुई कि इन्द्रा साहनी बनाम भारत सरकार के मशहूर मुक़दमे में सुप्रीम कोर्ट के अनुसूचित जाति विरोधी निर्णय पर रोक लगवाना थी।

फ़िलहाल मुसलमानों को आरक्षण देने के लिए एसी कोई लाचारी नहीं है। यदि मुसलमान आज़ादी के बाद सातवें दशक में भी असहाय है तो फिर उन्हें निश्चित रूप से यह सोचना चाहिए कि वे कब तक इस तरही चक्की के पाटों के बीच पिसते रहेंगे? हुज्जत कैसे पूरी हो अर्थात इस मामले को परिणति तक कैसे

पहुंचाया जाए? हम अब 2012 में हैं, सोचने की बात है कि 2112 के भारतीय मुसलमानों के लिए हम क्या छोड़ कर जाना चाहते हैं? अल्लामा इक़बाल ने रास्ता सुझाया हैः

दयार-ए-इश्क़ में अपना मुक़ाम पैदा कर